(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22 मार्च-2012 अंक-3

नव विक्रमी सम्वत् 2069 में

समस्त साधकों को अत्याधिक गहराई तक
ज्ञान गंगा में गोता लगाने हेतु
शुभकामनायें ।

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

(1936-2009)

ईश्वर की सेवा कैसे करें ?

(How to serve God)

✍ **डॉ० शम्भू नाथ**

भिन्न-भिन्न लोग ईश्वर की सेवा के अलग-अलग अर्थ लगा सकते हैं। जिस स्तर का जिसका ज्ञान है: उसी स्तर का उसका अर्थ होगा और उसी स्तर का उसकी ईश्वर की सेवा का फल होगा। इस विषय पर लेखक अपने स्तर की बात कहना पसन्द करेगा: यदि कोई ईश्वर की और उसकी सेवा का भिन्न अर्थ लगाना चाहे: तो लेखक का उससे कोई विरोध नहीं है।

ईश्वर असीम है। ईश्वर की शक्ति (इच्छापूर्ति) भी भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) के रूप में असीम है।

सीमित इन्द्रियों वाला व सीमित ज्ञान वाला कोई भी व्यक्ति उस असीम को अपनी चेष्टा से कैसे प्राप्त कर सकता है?

यदि हम निष्कपट हृदय से उन्हें प्रसन्न (सेवा) करेंगे अर्थात् उनकी भक्ति (Meditation) करेंगे तो भगवद् ज्ञान की प्राप्ति स्वतः हो जायेगी।

ईश्वरीय शक्ति सभी में इच्छापूर्ति शक्ति के रूप में विराजमान है। इसलिए यदि अध्यात्म जगत यह कहे: कि हमारी सारी इच्छाओं को पूरी करने वाला ईश्वर है: तो इसमें क्या गलत है?

लेकिन चेतना की कमी और अध्यात्म शिक्षा की कमी के कारण : अध्यात्म जगत के इस वाक्य का दूसरा अर्थ अपने आप निकल आता है और वह यह है कि शायद ईश्वर कहीं पर है और सब कुछ देख रहा है: जिससे खुश है, उसकी इच्छा पूरी कर देता है और जिससे खुश नहीं है: उसकी इच्छाओं को पूरी नहीं करता। इस तरह की बातें आज के समाज में फैलती जा रही हैं। इसका कारण केवल समाज की निम्न स्तर की चेतना (Low level of consiousness) है।

लेकिन ईश्वर की सेवा के लिए तो जानना अवश्यक है: कि उसकी इच्छा क्या है ?

भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) की शक्ति भावों और क्रियाओं के क्षेत्र की ओर अपने स्वभाव से ठीक इस तरह आती है: जिस तरह हवा अपने स्वभाव से शून्य की ओर दौड़ती है। यदि हम हवा के स्वभाव को हवा की इच्छा कह दें: तो इसमें क्या गलत है?

ईश्वरीय शक्ति, जो कि प्रकृति में सबसे बड़ी शक्ति है: उसका स्वभाव ही तो ईश्वर की इच्छा होगी। केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उसने चौरासी लाख अर्थात् अनगिनत योनियों को जन्म दिया है। इन योनियों में स्थूल जड़ें और सूक्ष्म मन हैं: जिनके माध्यम से यह शक्ति बाहर की दुनिया में केवल ईश्वर की इच्छा से प्रगट हो रही है।

ईश्वर की इच्छा क्या है?

भगवान की शक्ति अनुभव के क्षेत्र में सच्चिदानन्द के रूप में प्रगट होती है। ईश्वरीय शक्ति निर्जीव में भी है और प्राणी में भी।

निर्जीव में ईश्वरीय शक्ति का गुण: न बदलने वाले के रूप में है। लेकिन प्राणी में यह शक्ति अखण्डता का रूप धारण कर लेती है। अखण्डता का अर्थ: केवल आगे बढ़ने वाला (Progressing) है। कोई भी जीव ऐसा मिल ही नहीं सकता: जो अपने क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ना चाहता: क्षेत्र चाहे इन्जीनियरिंग का हो, राजनीति का हो या अध्यात्म जगत का: आगे बढ़ने की यह इच्छा सभी में है। इसका कारण केवल यह है: कि ईश्वर सब में है। इस तरह हम अच्छी तरह समझ लेते हैं,

कि यह ईश्वर की इच्छा है: कि कैसे ईश्वरी शक्ति क्रियाओं और भावों के जगत में अधिक से अधिक तीव्र गति से प्रगट हो सके? ईश्वर की इस इच्छा मे हाथ बटाना अगर ईश्वर

की सेवा नहीं है: तो और क्या है ?

जैसा कि हम लोग ऊपर देख चुके हैं: सेवा के क्षेत्र में महत्व दो चीजों का है: 1) क्षमता का और 2) उस स्तर का जहां से सेवा की क्रियाएं हमारे जीवन में प्रतिक्रिया के रूप में वापस आ सकें।

दोनों का महत्व ऊपर समझाया जा चुका है। समझते समय हम लोगों ने देखा कि शारीरिक बल और बुद्धि की शक्ति के स्तर की सेवाएं तुलनातमक दृष्टि से उतना बड़ा प्रभाव जीवन में नहीं दिखा सकतीं: जितना कि आत्मबल के माध्यम से की गई सेवाओं का होता है। कहने का अर्थ केवल यह है: कि शारीरिक और बुद्धि के स्तर की शक्तियों के माध्यम से की गई सेवाएं, जीवन को कुछ सुखदायी बना सकती हैं:

लेकिन दु:ख से परे करने की क्षमता तो केवल आत्मबल के माध्यम से की गई सेवाओं में ही है।

'ध्यान' का महत्व यहीं से शुरू होता है। इसकी पुष्टि रामायण की व्याख्याओं द्वारा होती है: यह कहा गया है कि मनुष्य को सब कुछ छोड़कर सुमिरन (ध्यान) करना है। ऐसा सिर्फ इसलिए लिखा है: क्योंकि दु:ख से परे होने की बात किसी और तरह सम्भव है ही नहीं।

ईश्वर की इच्छा केवल यही है, कि ईश्वरीय शक्ति: जो सब से सूक्ष्म जगत की शक्ति है: स्थूल जगत की ओर अधिक से अधिक तीव्र गति से कैसे प्रवाहित हो? ईश्वर की इस इच्छा को पूरा करने में व्यक्तिगत योगदान ही ईश्वर की सेवा है। संत कबीर जी फरमाते हैं :-

कबीर 'सूषिम' सुरति का, जीव न जानै जाल।
कहै कबीरा दूरि कर, आत्म अदिष्ट काल॥

अर्थात् सूक्ष्म सुरति में वह कौशल है: जिसके द्वारा साधक सरलता से

प्रभु तक पहुंच सकता है। सूक्ष्म का तात्पर्य है: कि वह सर्वथा आन्तरिक सुमिरन (Meditation) करे, स्थूल जप नहीं है। बेचारा जीव उसके इस कौशल को ही नहीं जानता है। यदि वह उसके इस कौशल को जान जाए: तो सूक्ष्म सुरति (Self Realization) का ऐसा प्रभाव है कि वह अपने दुष्ट और संहारक शक्ति: दोनों पर विजय प्राप्त कर सकता है। कबीर कहते हैं : कि हे जीव, उसे जानकर तू अपने अदृष्ट और काल को दूर भगा।

चेतना के स्तर

अध्यात्म बल बढ़ाने के लिए हम ध्यान सीखते हैं और उसका अभ्यास करते हैं। अभ्यास द्वारा इच्छा-पूर्ति शक्ति **(भावातीत चेतना)** बढ़ती है और यह इच्छा पूर्ति शक्ति चारों स्तर (four stages) की है:

1. **भावातीत चेतना (Transcendental Consciousness)**
2. **ब्राह्मी चेतना (Cosmic Consciousness)**
3. **ईश्वरीय चेतना (God Consciousness)**
4. **अद्वैत चेतना (Unity Consciousness)**

ब्राह्मी चेतना तक पहुंचने के पहले मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग अपने जीवन को सुखदाई बनाने के लिए करने लगता है। ज्यों-ज्यों यह शक्ति बढ़ने लगती है: सत्, चित् और आनन्द, तीनों मन में बढ़ने लगते हैं।

आनन्द वह सुख है: जो सुख की भूख मिटा दे।

जिस प्रकार अपने रसोई घर में, घर के सभी व्यक्तियों के खा लेने के बाद यदि खाना बच जाता है: तो बचे हुए खाने को दूसरे को देने की बात अपने मन में स्वयंमेव आने लग जाती है। इसी प्रकार कितना आसान है: यह समझना कि जिस अनुपात में सुख की भूख मिटने लगती है: दूसरे को सुख देने की बात अपने आप मन का स्वभाव होने लग जाता है। इसी को

तो नि:स्वार्थ सेवा कहते हैं।

जो स्वयं; तरह-तरह के दु:खों से पीड़ित है: उसका स्वभाव अपने दु:खों को कम करना होगा, दूसरों को सुख पहुंचाना नहीं होगा। अपने स्वभाव के विपरीत प्रयास हमारे उत्थान की गति को धीमा कर देगा। स्पष्ट है कि

'ध्यान' (Meditation) ही सेवा के भाव का आधार है। पहले तो हमारी क्षमता बढ़ती है: दूसरे यह कि हमारा स्वभाव अन्दर से बदल जाता है। स्वभाव सेवा परायण हो जाता है।

स्वाभाविक है कि शुरू में हम अपनी समस्याओं को दूर करने की कोशिश करेंगे ही। जैसे ही हम अपनी समस्याओं से परे होने लगते हैं: हमारी इच्छा पूर्ति शक्ति दूसरों की समस्या दूर करने में इसलिए लग जाती है: क्योंकि अपने जीवन में इस शक्ति के उपयोग की जरूरत ही नहीं रह जाती। ज्यों-ज्यों मनुष्य **ब्रह्मी चेतना** की ओर बढ़ता है: वह अपनी इच्छा-पूर्ति शक्ति द्वारा क्रियाओं के क्षेत्र में व्यस्त होकर दूसरों के जीवन को संवारने में लग जाता है। **ब्रह्मी चेतना** की अवस्था तक ईश्वरीय शक्ति (लीला शक्ति) के अधार पर क्रियाओं के क्षेत्र में सक्रिय होती है। उसका आत्मबल **ईश्वरीय चेतना** के स्तर का होने लगता है। ईश्वर का ध्यान सीखते समय हम लोगों ने देखा था: कि इसके अभ्यास से मनुष्य का वातावरण भी शुद्ध होता है।

वातावरण की शुद्धि वातावरण की सारी क्रियाओं में व्यवस्था लाती है। वातावरण की अशुद्धि ही: वातावरण की सारी अव्यवस्था का कारण है।

आज केवल हमारे देश में ही नहीं: बल्कि सभी देशों के वातावरण में तरह-तरह की अव्यवस्था के समाचारों से ही अखबार भरे रहते हैं। ध्यान में कितनी बड़ी ताकत है? यदि एक मनुष्य सौ मनुष्यों को सुखदायी नहीं बना सकता, तो कम से कम अपने परिवार को नि:सन्देह सुखदायी

बना ही सकता है। हम तो यह कहेंगे कि यदि किसी कुल में केवल एक मनुष्य भी अच्छी तरह ध्यान करने लगे: तो दो चार दस वर्षों के भीतर उस कुल के सभी व्यक्तियों के बीच एक सुखदायी वातावरण पैदा हो जाएगा। पति, पत्नी, भाई, माँ, पिता और बच्चों के बीच आज के समाज में जो कलह चारों ओर दिखाई पड़ता है: वह धीरे-धीरे कम होने लगेगा और हम रामराज्य की स्थापना की ओर फिर से मुड़ने लगेंगे।

सेवा से संतुष्टि कैसे मिले ?

सेवाएं समाज में हमेशा से व्यक्तिगत और प्रशासनिक दोनों स्तरों पर होती रही हैं। खोज करने की बात तो केवल यह है कि ये सेवाएं इतनी प्रभावशाली क्यों नहीं है: कि हम इनसे सन्तुष्ट हो जाएं? हममें कहां पर: क्या कमी है और कहां पर सुधार की आवश्यकता है? सिद्धांत की बात तो केवल इतनी है: कि सेवाओं की क्षमता का स्तर क्या है? यदि क्षमता का स्तर केवल शारीरिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति, रुपये पैसे की शक्ति या समाज के पद की शक्ति, या इन्हीं स्तरों की और शक्तियां हैं: तो सफलता सन्तुष्ट करने वाली नहीं हो सकती। कारण केवल यह है: कि यह सारी साधनाएं क्रियाओं के क्षेत्र की होती हैं और ये क्रियाएं कभी भी व्यक्तिगत अहं (Ego) से ऊपर नहीं होतीं।

आत्मबल के माध्यम से जो सामाजिक सेवाएं होती हैं:
वे अहं से परे होती हैं।

यही कारण है कि ऐसी सेवाओं की प्रतिक्रिया सेवा करने वाले के जीवन को दु:ख से परे कर देती हैं। इसके विपरीत छोटे स्तर (below standard) की सेवा करने वाले का जीवन कभी दु:खों से परे नहीं हो पाता।

मनुष्य जब 'ध्यान की साधना', में लगता है
तो सबसे पहले अपना घर ही ठीक होता है।

जब कुछ वर्षों की साधना से अपने घर के प्राणी सुख और शांति से रहने योग्य हो जाते हैं : केवल उसके बाद ही किसी समाज या संगठन के स्तर की सेवाओं का प्रश्न उठता है, या देश-सेवा की बात मन में उठती है।

लक्ष्य प्राप्ति

ईश्वर का दर्शन हर समय होता रहता है। ईश्वर केवल एक है। अर्थ यह निकला कि **ईश्वरीय चेतना** और **अद्वैत चेतना** की अवस्था में मनुष्य को हर चीज में केवल एक ही ईश्वरीय तत्व दिखाई पड़ता है। इसीलिए इस चेतना का नाम **अद्वैत चेतना** पड़ा। सब में ईश्वर की उच्च कोटि की अवस्था है। जो दूसरों को ध्यान सिखाने लगते हैं: वे समाज के अन्दर ईश्वर सेवा से सम्बन्धित शिक्षा का बीज बोते हैं। वे आगे चलकर इस कार्य को **ब्रह्मी चेतना, ईश्वरीय चेतना** या अ**द्वैत चेतना** के स्तर पर करने लगते हैं। ऐसे काम का बीज बोना केवल **ईश्वरीय चेतना** या **अद्वैत चेतना** के महात्माओं का होता है। जो इस तरह की सेवाओं में व्यस्त हैं: उनके जीवन में इतने ऊंचे स्तर की सेवा की प्रतिक्रिया होगी और धीरे-धीरे पूरे समाज की सामूहिक चेतना (collective consciousness) के स्तर की प्रतिक्रियाएं उनके जीवन में सुखदायी फल लेकर आने लगती हैं। इसी कारण ऐसे लोग अमर हो जाते हैं। हम चाहे जो साधना लेकर चलें-यदि साधना को शिक्षा का रूप दे दें: कहने का अर्थ यह है कि यह हमेंशा ही याद रहे, कि हमारी साधना का स्तर दिन प्रतिदिन इस तरह उठे : जैसे किसी स्कूल में पढ़ने वाला लड़का धीरे-धीरे पहली कक्षा से एम.ए., एम.एस.सी. की ओर चलता है।

तो जीवन की कोई भी साधना हमें जीवन के सर्वोच्च स्तर
(Highest Standard) तक ले जाने में सफल हो सकती है।

लेकिन यदि किसी साधना की कुछ खास क्रियाओं को ही साधना मान लें और जीवन भर उसी क्रिया को दुहराते रहें: तो यह जीवन भर किसी एक

ही दर्जे (Standard) में पड़े रहने के समान हो जाता है और ऐसे मनुष्यों का जीवन, जीवन के उतार-चढ़ाव से कभी मुक्त नहीं हो पाता। संत कबीर के अनुसार-

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहा संतो ! क्यों पाइए, दुर्लभ हरि दीदार॥

इस राखी में कबीर ने एक सुन्दर रूपक के द्वारा अपने भाव को व्यक्त किया है। पथिक (मन) का घर (Home) बहुत दूर है: और मार्ग केवल लम्बा ही नहीं है, दुस्तर भी है। मार्ग में बहुत से बटमार भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचना अत्यन्त दुर्लभ है।

घर (Home) पहुंचने के समान प्रभु की प्राप्ति अपना लक्ष्य है।

East or West : Home is the Best. अनेक योनियों में भ्रमण करने पर जीव को यह अवसर मिलता है कि वह प्रभु की ओर अग्रसर हो। इसीलिए मार्ग को लम्बा कहा गया है। माया (गलतफहमी) के कारण यह मार्ग अत्यन्त दुस्तर भी है। राग-द्वेष, लोभ, मोह आदि बटमार हैं: जो साधक-पथिक की आध्यात्मिक- यात्रा में अनेक विघ्न उपस्थित करते हैं। कबीर कहते हैं कि-

हे संतो ! कहो, ऐसी स्थिति में कोई अपने लक्ष्य तक कैसे पहुंचेगा?

ऐसी दशा में प्रभु का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिए चेत जाओ: और 'ध्यान योग की सहायता', (सरल मार्ग) से विघ्नों से बचते हुए: अपने लक्ष्य को प्राप्त हो जाओ। ❑

जब जागो : तभी सवेरा

✍ **श्रीमती ऊषा गर्ग (08901265520)**
1645, अर्बन एस्टेट-॥, हिसार

विपत्तियाँ व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। इनमें तपेत हुए आशावादी व्यक्ति : चिन्तन मनन (Self Realization) से अपने को निखार लेता है

और निराशावादी अग्नि में भस्म हो जाता है। अहल्या, सुग्रीव, विभीषण, माँ कुन्ती, द्रोपदी : इन सब का उदाहरण हमारे सामने है। भगवान् की शरण ली : और तर गए। मां कुन्ती ने तो यहां तक कहा : मुझे विपत्तियां ही दो ताकि मैं लगातार अपने ध्यान में रहूं। **छोटी मोटी संसार की विपत्तियां सहन करना ही श्रेष्ठ है: अगर भगवान का ध्यान रहे।** कई बार लोग अनुमान लगा लेते हैं कि संसार की वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए इतना अधिक प्रयत्न करना पड़ता है : तो भगवान् को प्राप्त करने के लिए न जाने कितना प्रयत्न और परिश्रम करना पड़ेगा ? सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए पूरा जीवन लगाने पर भी ये प्राप्त नहीं होतीं, तो विलक्षण भगवान् : जिनकी तुलना में विश्व-ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु नहीं ठहर सकती, वे सांसारिक कार्य करते हुए इतनी सरलता से कैसे मिल सकते हैं? किसी के मन को जंगल में जाकर घोर तपस्या करने का विचार; किसी की कोई और मान्यता। पर इनमें कोई सच्चाई नहीं।

सच्चाई कुछ और है ?

संसार की वस्तुएं दुख देने वाली हैं: जब कि भगवान स्वयं सुखदाता, शान्तिदाता, प्रेमी और सत् चित् आनन्द के देने वाले हैं।

लोग आनन्द में रहना चाहते हैं: पर वे आनन्द को मात्र धन या भोग विलासिता समझ लेते हैं। पर यह उनकी भूल है। आनन्दमय होने का तरीका अलग है : यह भीतर की बात है।

मनुष्य जिस दिन यह समझ ले कि उसके जीवन का उद्देश्य क्या है?

समझो उसी दिन उसका जन्म हुआ। जीवन का सही उद्देश्य: ध्यान द्वारा भगवान् से मिलन है।

एक घटना है : एक राजा प्रभु में आस्था रखने वाले थे। प्रजा का सुख-दुख जानने के लिए भेष बदलकर: प्रजा में आते जाते और कोशिश करते: उनको ज्ञान एवं कुछ नया सीखने को मिले। सत्संग के शौकीन थे। एक दिन एक किसान मिला, जो लगभग 70 साल का था: पर चेहरे

पर चमक थी। राजा ने उससे कहा: आपके बाल सफेद, पर चेहरे पर नूर का क्या कारण है और उसकी उम्र पूछी ? किसान ने कहा 5 वर्ष। राजा ने कहा: कैसे? किसान कहता: 65 वर्ष तो मैंने परिवार और इधर-उधर गंवा दिए। पांच साल से ही सही जीवन ईश्वर उपासना और ध्यान सेवा में लगा। अब हृदय में प्रेम, भरपूर शक्ति और ईश्वर की जानकारी हुई। इसलिए 5 वर्ष ही उम्र हुई।

राजा की शंका का समाधान हुआ और उसको लगा : ''**मुझे आज सब कुछ मिल गया।**'' मेरी सभी से प्रार्थना है : कि आज ही जागो और ध्यान साधना से अपने जीवन को सार्थक बना लो। ❑

आत्मोत्थान के लिए: अपनी आय का कुछ अंश निकालना जरूरी क्यों ?

✍ **डॉ० बलदेव राज नाशा**

यह सृष्टि दो भागों में बंटी है : इन्द्रिय जगत और इन्द्रिय से परे जगत। इन्द्रिय जगत के धन का मूल्य परा जगत में नहीं होता। इन्द्रिय जगत का हर साधक एक दूसरे का भाई होता है। अत: जो भी आय का अंश भगवान के नाम से कोई साधक निकालता है: वह मात्र उस संस्था या गुरु की मदद करता है, जिसे वह देता है। अपनी जीवात्मा के उत्थान पर वह उस धन को खर्च नहीं कर रहा है। आत्म-ज्ञान: आत्मा की दुनिया का धन है। अत: जो संस्था या शिक्षक सीधे किसी का आत्म-ज्ञान बढ़ाता है, या किसी समाज का आत्म-ज्ञान बढ़ाता है: तो वह उन साधकों पर वह धन (आय का अंश) खर्च कर रहा है, जिसका मूल्य आत्मोत्थान के संसार में है। उसे इसका लाभ अवश्य मिलता है। यह धन: समाज में 'होनी' के रूप में हर व्यक्ति अपने जीवन में अनुभव कर सकता है।

जिसे भी लगे कि समय बीतने के साथ-साथ उसका जीवन उत्थान की ओर अग्रसर कर रहा है, उसके पास प्रमाण है : कि वह अपना धन या

ज्ञान या मेहनत, सही दिशा में लगा रहा है।

मनुष्य के जन्म का उद्देश्य आत्म-ज्ञान की प्राप्ति है। आन्तरिक जगत में कुछ कर्म करके : उस धन को कमाना है : जो उसका अपना धन है। ऐसे धन को आत्म धन कहते हैं।

जिस प्रकार से किसी कक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् आगे की कक्षा में पीछे की कक्षा का कमाया हुआ धन लेकर ही पाठक आगे जाता है: इसी प्रकार से हर मनुष्य पृथ्वी पर कमाया हुआ आत्म-धन लेकर ही दूसरा जन्म लेता है। ❑

भक्ति योग

(सन्यासी गीता)

अर्जुन बोले: कृष्ण जी! मुझको दो समझाय।
सगुण भक्ति भली है, या निर्गुण की जाय?
जो भक्ति मेरी करें, मुझ में लायें चित्त।
भय: मृत्यु का दूर हो, मुझे ही ध्यावें नित्त॥
चंचलता रोके पुरुष, मन को ले ठहराय।
'ध्यान अभ्यास', से युक्त चित्त, मुझ को जल्दी पाय॥
'ध्यान अभ्यास', जो न करे: अर्पण कर्म करे।
फल अभिलाषा त्याग कर: कारज सभी करे॥
ऐसा भी न हो सके, मुझ से करे अनुराग।
सब कर्मों के फल को, अर्जुन! दे तू त्याग॥
ममता किसी से न करे, द्वेष कभी न होय।
अंहकार ममता तजे: सुख दुख में न रोय॥
सदा रहे संतोष से, मन हो अपने हाथ।
प्राण बुद्धि मुझ में धारे: रहे वह मेरे साथ॥

हर्ष भय अरु क्रोध में, व्याकुल चित्त न होय।
फल अभिलाषा छोड़ दे: सच्चा त्यागी सोय॥
शत्रु मित्र समदृष्ट रहे: सहे मान अपमान।
सर्दी-गर्मी कष्ट सुख, संग करे न आन॥
स्तुति निन्दा में भक्त, धार लेवें संतोष।
ऐसे पुरुषन का सदा, करूँ मैं पालन पोष॥

-प्रस्तुति : अनु जैन (भिवानी)

निरोगी काया: जीवन की अमूल्य निधि

✍ **श्री सत्य नारायण शर्मा (09416164702)**

प्रकृति ने हर मनुष्य को मन, बुद्धि और शरीर प्रदान किया है। जो भी अपने मन को तपा कर निखारने में सफल होगा: उसका मन जीवन के दुखों से दूर हो जाएगा। जो अपनी बुद्धि को तपाकर निखारने में सफल हो जाएगा: वह जीवन की सारी परेशानियों से मुक्त हो जाएगा और जो अपने स्नायु संस्थान को तपाकर निखारने में सफल हो जाएगा: वह समस्त शारीरिक रोगों से मुक्त हो जाएगा।

दु:ख रहित मन, परेशानियों रहित बुद्धि और रोग रहित शरीर: जीवन की अमूल्य निधि हैं।

ये जिसे भी प्राप्त हो जाती हैं: वह निश्चय ही समस्त इच्छाओं की पूर्ति का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

जिस तरह से सोना आग के सम्पर्क में तपकर निखरता है: बिल्कुल उसी प्रकार से मन मात्र ब्रह्मसुख (Self Realization) में तपकर निखरता है।

प्रयासहीनता (Meditation) के समय पराजगत की शक्ति मन में पिरोती है और तब ब्रह्मसुख की उत्पत्ति मन में होती है। इस तरह से मन ब्रह्म

सुख के समपर्क में आता है और साधक अपने मन में ब्रह्म-सुख उभार कर क्रियाओं के क्षेत्र में क्रिया हेतु वापस आता है। इसी को गीता (2.48) में **''योगस्थ कुरु कर्माणि''** योग में स्थित होकर कर्म करना कहा है।

ज्यों-ज्यों, धीरे-धीरे साधक का ध्यान अभ्यास बढ़ता है: ब्रह्म सुख का उभरना बढ़ता रहता है और एक निरन्तर अभ्यास द्वारा वह हर समय ब्रह्मसुख में लीन रहने लगता है। ज्यों-ज्यों ब्रह्म सुख की तीव्रता बढ़ती है: मन और अधिक निखर कर क्रियाओं में आता है। और

क्रिया जगत को दिव्य शक्तियां प्राप्त होती हैं। ये दिव्य शक्तियां जीवन की क्रियाओं को संवारती हैं, जिससे धीरे-धीरे जीवन भी संवरता है।

मात्र मन में ब्रह्मसुख की कमी ही सारे दुखों का कारण है, लेकिन सारा जगत तो दु:ख का कारण: बाह्य जगत की क्रियाओं में समझता है। यह समझ उसकी बिना तपी हुई बुद्धि की देन है। फलस्वरूप वह अपने जीवन के दु:खों से छुटकारा पाने के लिए अन्दर का प्रकाश बढ़ाने के बजाय इन्द्रिय जगत की क्रियाएं बढ़ाना शुरू कर देता है या क्रियाओं में गलतिएं निकालने का प्रयास करता है। इस तरह से दिन बीतने के साथ: और बड़े मायावी दलदल (गलतफहमी) में फंसता चला जाता है।

जो साधक प्रयासहीनता (Meditation) के अभ्यास से जुड़ते ही चले जाते हैं: उनका मन तप कर बुद्धि से जुड़ता है और धीरे-धीरे बुद्धि को तपाता है। धीरे-धीरे बुद्धि में दिव्य-जगत का प्रकाश लाता है।

दूसरे शब्दों में दिव्य जगत का ज्ञान आता है। मात्र इस प्रकाश की कमी ही: जीवन की परेशानियों का कारण है। परन्तु मायावी दलदल में फंसा हुआ व्यक्ति अपनी परेशानियों को इन्द्रिय जगत की वस्तुओं की कमी से जोड़ता है और उन क्रियाओं में ज्यादा व्यस्त होने लगता है, जो उन

वस्तुओं को उनके जीवन में ला सके। ऐसा बहुधा देखा जाता है कि जीवन में वस्तुओं की कमी तो मिट जाती है: लेकिन परेशानी नहीं जाती।

ब्रह्म-सुख की कमी में इन्द्रिय सुख दु:खदायी है।

ब्रह्म-सुख के साथ इन्द्रिय सुख दु:ख देने की क्षमता खो देता है और यह ज्ञान मात्र दिव्य शक्ति द्वारा प्रकाशित बुद्धि में है।

यों बुद्धि विश्राम से, मिटे अहं मतिमन्द।
बिन प्रयास प्रभु का मिले: सत, चित और आनन्द॥

बुद्धि के विश्राम की अवस्था में ही मन अन्तर्जगत में जाता है: जहां मन को बिना कुछ किए ही (केवल ब्रह्म के सम्पर्क में रहने मात्र से) अर्थात् बिना प्रयास ही, ब्रह्म के गुण सत् चित् और आनन्द मिलने लगते हैं, जो बाद में मन के बाह्य जगत में क्रियाशील होने पर जीवन के हर पहलू को संवारने लगते हैं तथा संसार की सभी विभूतियों तथा मान-सम्मान इत्यादि प्रत्येक इच्छित पदार्थ को देने लगते हैं।

❊ ❊ ❊

ध्यान माला

✍ **श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'**

दोहा-24 : स्वाभाविक जीवन जियें, लख चौरासी जान।
संस्कार निर्मूल हित, प्रभु का सरल विधान॥

बुद्धि के अनुशासन से मुक्त स्वाभाविक जीवन जीने से: संस्कारों का निष्कासन होता है अर्थात् दु:ख देने वाले पापों (संस्कारों) का क्षय होता है। भगवान की अहैतुकी कृपा से मनुष्येतर सभी प्राणी स्वाभाविक जीवन जीते हैं और विभिन्न योनियों की विभिन्न परिस्थितियों द्वारा उनके विभिन्न प्रकार के संस्कार निकलते रहते हैं। प्राणियों के विकास हेतु करुणासागर भगवान की यह महती दया है: कि उसने संस्कारों के निकालने की इतनी सरल और श्रमरहित व्यवस्था की है। ❑

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER